दामोदर एस. प्रभु

बनाम

सईद बाबालाल एच.

(आपराधिक याचिका संख्या 963/2010 अन्य.)

03- मई, 2010

{के.जी.बालाकृष्णन, सी.जे.आई., पी.सथासिवम व जे.एम.पंचाल जे.जे.}

परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881:

धारा. 147 व 138 परक्राम्य लिखित अधिनियम-अपराध का प्रशमन-धारा 138 को अन्तर्वलयित करते हुए अपराध की अपील माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित है-पक्षकारों के मध्य व्यवस्थापन हो गया। निर्धारित-अपराध के प्रशमन की अनुमति दी गई एवं प्रत्येक प्रकरण में अभियुक्त की दोषसिद्वी को अपास्त किया गया।

धारा 147-धारा 138 के अपराध का प्रशमन-दिशा-निर्देश- निर्धारित-सर्वोपरि खण्ड, जो परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 147 में प्रशमन के प्रावधान पर अधिभावी प्रभाव रखता है तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 में प्रावधित योजना में कठोरता से प्रवृत्त नहीं होगी जबकि प्रश्चातवर्ती धारा भारतीय दंड संहिता में विनिर्दिष्ट अपराधों के प्रशमन की

दृष्टि से प्रावधित है-यह स्पष्टतः प्रकट है कि अपराधों के प्रशमन की अनुमति अपराध की गम्भीरता एवं जो उपचार प्रावधित है उनकी प्रकृति से जुड़ी हुई है-यह पूर्णतः स्पष्ट है कि चैक के अनादरण के मामलों के सन्दर्भ में उपचार नुकसान भरपाई के दृष्टिकोण से है जिसे दण्डात्मक दृष्टिकोण के ऊपर प्रभाव दिया जाना चाहिए-ऐसे मामलों में समस्या यह है कि पक्षकारों के देरी से विवाद को प्रशमन करने की प्रवृत्ति पाई जाती है-इसके अतिरिक्त जैसा कि धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता के लिए धारा 320 दण्ड प्रक्रिया संहिता में कोई सुस्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं दिए गए हैं कि किस प्रक्रम पर राजीनामा किया जा सकता है और कब नहीं किया जा सकता एवं क्या परिवादी के द्वारा ही निवेदन करने पर प्रशमन हो सकता है या न्यायालय की अनुमति के पश्चात् ही प्रशमन हो सकता है-जैसे ही मजिस्ट्रेट शिकायत पर प्रसंज्ञान लेते है विधिक दिशा-निर्देशों के अभाव में पक्षकार प्रशमन किए जाने का चयन अंतिम हल के रूप में करते हैं-यदि अभियुक्त मुकदमें के किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रय पर राजीनामा अथवा समझौता के माध्यम से अपराध का प्रशमन करना चाहता है तो यह इस बात का संकेतक होता है कि परिवादी के मामले में कुछ गुणावगुण पर गहनता है-ऐसे मामलों में यह ऐषणीय है कि पक्षकार प्रकरण के प्रारम्भिक प्रक्रम पर ही प्रशमन करें-यदि, यद्यपि अभियुक्त बचाव के तौर पर किसी गलती जालसाजी या उत्पीड़न का आधार रखता है तो ऐसे मामलों में विनिर्दिष्ट मंच के माध्यम से मुकदमा किया जा सकता है-परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 138

में अपराधों के प्रशमन किए जाने और ऐसे पक्षकार जो अपराधें के प्रशमन को अवांछित रूप से देरी करते हैं उनपर खर्चे लगाए जाने के लिए दिशा-निर्देश दिए गए-इसके लिए यह आज्ञापक होगा कि परिवादी को यह प्रकट करना होगा कि इसी संबंध में कोई अन्य मामला किसी अन्य न्यायालय में लंबित नहीं है-धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता के मामले में अपराध के प्रशमन के लिए कैसे आगे बढ़ना है इस सन्दर्भ में विधायन में निर्वात है, कोई दिशा-निर्देश नहीं दिए गए हैं। अतीत में भी सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 की शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस विधायी निर्वात को पूर्ण करने के लिए दिशा निर्देश बनाए जाने के सन्दर्भ में अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है-दंड प्रक्रिया संहिता 1973-धारा 320-भारतीय संविधान 1949-अनुच्छेद 142-विधायन-विधायी रिक्तता-न्यायिक उदघोषणा द्वारा अंतर पर सेतु बनाया है।

ओ.पी.ढोलकिया बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा, (2000)1 एस.सी.सी. 672 सिवासंकरन बनाम स्टेट ऑफ केरला व अन्य, (2002) 8 एस.सी.सी. 164, किशोर कुमार बनाम जे.के.कॉर्पोरेशन लि., (2004) 12 एस.सी.सी. 494, सेलेश श्याम परसेकर बनाम बबन, (2005) 4 एस.सी.सी. 162, विनय देवन्ना नायक बनाम रयोत सेवा सहकारी बैंक लि., (2007)(12) एस.सी.आर. 1134=(2008) 2 एस.सी.सी. 305, आर.राजेश्वरी बनाम

एच.एन.जगदीश, (2008) 4 एस.सी.सी. 82 एव के.एम. इब्राहिम बनाम के.पी.मोहम्मद व अन्य, 2009(14) स्केल 262, संदर्भित किए गए।

संदर्भित पुस्तकें-दण्ड प्रक्रिया संहिता (पांचवा संस्करण)-लेखक के.एन.सी.पिल्लई, आर.वी.केलकर(लखनउ-ईस्टर्न बुक कंपनी, 2008) पृष्ठ संख्या 444; धारा 138 परक्राम्य लिखित अधिनियम के विषय पर विधि सुधार के संबंध में रखे गए कुछ विचार-टेकलिंग एन एवेलान्च ऑफ केसेज-लेखक अरूण मोहन(प्रकाशक-युनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी प्राईवेट लि., 2009 न्यू दिल्ली) संदर्भित पृष्ठ संख्या-5

संदिर्भत कानून

(2000) 1 एस.सी.सी. 672	संदर्भित	पैरा-6
(2002) 8 एस.सी.सी. 164	संदर्भित	पैरा-7
(2004) 12 एस.सी.सी. 494	संदर्भित	पैरा-7
(2005) 4 एस.सी.सी. 162	संदर्भित	पैरा-7
(2007)(12) एस.सी.आर. 1134	संदर्भित	पैरा 9
(2008) 4 एस.सी.सी. 82	संदर्भित	पैरा 10
(2009)(14) स्केल 262	संदर्भित	पैरा 11

दाण्डिक अपीलय क्षेत्राधिकारःआपराधिक अपील संख्या 963/2010

बॉम्बे उच्च न्यायालय, गोवा की आपराधिक अपील संख्या 74/2006 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 14.8.2007 से।

के साथ

आपराधिक अपील संख्या 964-966 सन् 2010

जी.ई.वाहनवती, एस.जी.आई.(ए.सी.) अरूणआर.पेडनेकर वी.एन.रघुपति अपीलार्थी की ओर से

श्री सुनील कुमार वर्मा प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया-

आदेश

1. अनुमति दी गई।

2. वर्तमान अपील दामोदर एस.प्रभु बनाम से जुड़े परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 138 (जिसे आगे अधिनियम के नाम से संबोधित किया जायेगा) के प्रकरण के संबध में है। चूंकि दोनों पक्षकार अधिनियम की धारा 147 में वर्णित प्रावधान के अनुसार एक समझौते पर राजी होकर पहुंच चुके है और उनके द्वारा उक्त धारा के अनुसार प्रशमन के लिए निवेदन किया है इसलिए हमें इस प्रकरण के संस्थापन प्रक्रिया से लेकर हम तक

पहुंचने के तथ्यों पर कोई भी प्रकाश डालने की आवश्यकता शेष नहीं रहती है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि पक्षकार एक वाणिज्यिक संव्यवहार में अन्तर्लिप्त थे और अपीलार्थी के द्वारा जारी किए गए पांच चैकों के अनादरण होने से यह मामला विवाद के रूप में उठा। फलतः विशेष अनुमति से इस न्यायालय तक मामला पहुंचने से पहले मुकदमें के विभिन्न प्रक्रमों पर पक्षकारों ने कई दौर देखें हैं। बम्बई उच्च न्यायलय पीठ गोवा के द्वारा जारी किए गए आक्षेपित निर्णय के सन्दर्भ में अपीलार्थी ने दोनों पक्षों के मध्य हुए राजीनामे के शर्तों के आधार पर उसकी दोषसिद्वी को अपास्त किए जाने के लिए इन मामलों में प्रार्थना की थी। उत्तरदाता ने इस तर्क का कोई खण्डन और विरोध नहीं किया है, अतः फलतः हम इन अपराधों के प्रशमन की अनुमति देते हैं और आक्षेपित निर्णयों के माध्यम से अपीलार्थी की दोषसिद्वी को अपास्त करते हैं।

3. हालांकि कुछ बड़े मुददे हैं जिन्हें वर्तमान मामले के संदर्भ में उचित रूप से संबोधित किया जा सकता है। यह स्मरण किया जा सकता है कि अध्याय 17 जिसमें धारा 138 से 142 शामिल है, को बैंकिंग सार्वजनिक वित्तीय संस्थान और परक्राम्य लिखित कानून (संशोधित) अधिनियम, 1988, (1988 का 66) द्वारा अधिनियम में शामिल किया गया था। धारा 138 को कानून में लाने का उद्वेश्य बैंकिंग परिचालन की प्रभावकारिता और दस्तावेजों पर व्यापार करने में मनोगत विश्वसनीयता में विश्वास पैदा करना

था। इसका उद्देश्य ईमानदार भुगतानकर्ताओं के उत्पीड़न को रोकने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपायों के साथ, चैक जारीकर्ता द्वारा की गई अपर्याप्त व्यवस्था के कारण चैक अनादरित होने की स्थिति में चैक जारीकर्ता को दण्ड के लिए उत्तरदायी बनाकर देनदारियों के निपटान में चैक की स्वीकार्यता को बढ़ाना था। यदि चैक जारीकर्ता के खाते में धनराशि की कमी के कारण चैक अनादरित हो जाता है या यदि वह उस खाते से भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक हो जाता है, तो चैक जारी करने वाले को दो साल तक की कैद या जुर्माना हो सकता है, इसे चैक की राशि से दोगुना या दोनों से दण्डित किया जा सकता है। यहां यह उल्लेखित करना उचित है कि जब 1988 में अपराध को विधि में शामिल किया गया था, तो इसमें एक साल तक की कैद का प्रावधान था जिसे 2002 में अधिनियम में संशोधन के बाद संशोधित करके दो साल कर दिया गया था। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विधायी मंशा चैक के अनादरण की चिन्ताजनक रूप से बढ़ती घटनाओं को रोकने के लिऐ एक मजबूत आपराधिक उपचार प्रदान करना था। जबकि दो साल तक की कैद की संभावना दण्डात्मक प्राकृति का एक उपाय प्रदान करती है, जुर्माना जो चैक की राशि से दोगुना हो सकता है, लगाने का प्रावधान एक प्रतिपूरक उद्देश्य को पूरा करता है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि चैक के अनादरण को एक नियामक अपराध के रूप में सबसे अच्छी तरह वर्णित किया जा सकता है जिसे संबंधित सुनिश्चित करने में सार्वजनिक हित की सेवा के लिए बनाया गया है। इस

अपराध का प्रभाव आमतौर पर वाणिज्यिक लेनदेन में शामिल निजी पक्षकारों तक ही सीमित है।

4. निरपवाद रूप से एक मजबूत आपराधिक उपचार के प्रावधान ने बड़ी संख्या में ऐसे मामलों की स्थापना को प्रोत्साहित किया है जो अधिनियम की धारा 138 द्वारा विचारित अपराध से संबंधित हैं। इतना अधिक, कि वर्तमान में हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली को, विशेष रूप से मजिस्ट्रेट अदालत के स्तर पर, चैक के अनादरण से जुड़े मामलों की संख्या अनुनापातिक बहुत अधिक है। भारतीय विधि आयोग की 213 वीं रिपोर्ट के अनुसार, अक्टूबर 2008 तक देश की विभिन्न अदालतों में 38 लाख से अधिक चैक बाउन्स के मामले लंबित थे। यह हमारी न्यायिक प्रणाली पर अभूतपूर्व दबाव डाल रहा है।

5. श्री गूलम ई. वाहनवती, महा न्यायभिकर्ता(वर्तमान में भारत के महान्यायवादी), वर्तमान मामले में न्यायमित्र के रूप में उपस्थित हुए थे और यहां दिए गए तथ्यों को एक उदाहरण के रूप में संदर्भित किया था कि कैसे चैक बाउन्स मामलों में शामिल पक्ष आमतौर पर प्रकरण के बहुत बाद के प्रक्रम पर अपराध के शमन की मांग करते हैं। न्याय के हित वास्तव में बेहतर होंगे यदि पक्षकार कई मंचों पर लंबी मुकदमेंबाजी में उलझने के बजाए किसी भी प्रारंभिक चरण में अपने विवादों को हल करने के लिये प्रशमन का सहारा लें जिससे न्यायिक प्रणाली में अनुचित देरी,

व्यय और तनाव न हो। यह स्पष्ट रूप से एक ऐसी स्थिति है जो कुछ चिंता का कारण बन रही है, क्योंकि अधिनियम की धारा 147 यह निर्धारित नहीं करती है कि अपराध को कम करने के लिए कौन सा चरण उपयुक्त है और क्या शिकायतकर्ता के कहने पर या न्यायालय की अनुमति से ऐसा किया जा सकता है। महान्यायवादी ने इस बात पर बल दिया कि प्रकरणों के शीघ्र निस्तारण के लिए मामलों का शमन किया जाना महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में विद्वान महान्यायवादी ने यह प्रस्ताव भी दिया कि इस न्यायालय को उन पक्षकारों को, जो अनावश्यक देरी से अपराधों के शमन के लिए निवेदन करते हैं, के हतोत्साहन के लिए दिशा निर्देश बनाने चाहिए। अन्य शब्दों में न्यायिक निर्देश के माध्यम से पक्षकारों को प्रकरण के प्रारम्भिक चरण में ही अपराधों के शमन के लिए प्रोत्साहित किए जाना चाहिए ताकि मुकदमों के अम्बार को कम किया जा सके।

6. विद्वान महान्यायवादी द्वारा प्रस्तावित दिशा-निर्देशों की जांच करने से पहले परक्राम्य अधिनियम, 1881 में अपराधों के शमन के लिए स्थिति को स्पष्ट करना उपयोगी होगा। अधिनियम में धारा 147 के प्रस्थापित (2002 के संशोधन द्वारा) किए जाने से पूर्व कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा प्रकरण के देरी के चरण पर भी धारा 138 के अपराधों के शमन के लिए अनुमति दी गई हैं। वस्तुतः न्यायिक दृष्टान्त ओ.पी.ढोलकिया बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा, (2000)1 एस.सी.सी. 672, में खण्डपीठ के द्वारा, यद्यपि

तीनों प्राधिकृत मंचों द्वारा याचिकाकर्ता की दोषसिद्धी के आदेश को सही ठहराया है, तो भी याचिकाकर्ता के अपराध के शमन की अनुमति दी थी। याचिकाकर्ता ने पहले ही परिवादी से राजीनामा कर लिया था, यह देखने के बावजूद पीठ ने राज्य के इस तर्क को खारिज कर दिया था कि न्यायालय को दोषसिद्धी और दण्डादेश में किसी प्रकार के हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह पक्षकारों के लिए खुला था कि वे प्रारम्भिक चरण में ही राजीनामा कर सकते थे और उन्होंने ऐसा नहीं किया। पीठ ने यह अवलोकन दियाः-

> "विचाराधीन अपराध की प्रकृति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि शिकायतकर्ता और आरोपी ने पहले ही समझौता कर लिया है, हम वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में प्रशमन करने की अनुमति देना उचित समझते हैं"

7. सिवासंकरन बनाम स्टेट ऑफ केरला व अन्य, (2002) 8 एस.सी.सी. 164, किशोर कुमार बनाम जे.के.कॉर्पोरेशन लि., (2004) 12 एस.सी.सी. 494 और सैलेश श्याम सुन्दर बनाम बबन (2005) 4 एस.सी.सी. 162 व अन्य मामलों में भी इसी तरह की राहत दी गई थी। जैसा कि उपर उल्लेख किया गया है, परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 को परक्राम्य लिखित अधिनियम(संशोधन और विविध प्रावधान)

अधिनियम, 2002 द्वारा संशोधित किया गया था जिसने अधिनियम के तहत अपराधों को समझौता योग्य बनाने के लिए, एक विशिष्ठ प्रावधान, यानी धारा 147 शामिल किया। हम 2002 के संशोधन से जुड़े उद्देश्यों और कारणों के विवरण से निम्नलिखित उद्धरण का उल्लेख कर सकते हैं जो स्वव्याख्यात्मक हैः-

> ‘‘प्रारम्भिक वक्तव्य-उद्देश्य और कारणों का विवरण-परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 को बैंकिंग, सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों और परक्राम्य लिखित कानून, संशोधन, अधिनियम, 1988 द्वारा संशोधित किया गया था, जिसमें दण्ड के मामले में एक नया अध्याय 17 शामिल किया गया था। चैक जारी करने वाले के खाते में धनराशि की कमी के कारण चैक का अनादर होना। इन प्रावधानों को चैक के उपयोग की संस्कृति को प्रोत्साहित करने और लिखित साधन की विश्वसनीयता बढ़ाने की दृष्टि से शामिल किया गया था। परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 के मौजूदा प्रावधान, अर्थात अध्याय 17 में धारा 138 से 142, चैक के अनादरण से निपटने में न्यून पाए गए हैं। न केवल अधिनियम में प्रदान की गई सजा अपर्याप्त साबित हुई है बल्कि ऐसे मामलों से निपटने के लिये अदालतों के लिए

निर्धारित प्रक्रिया भी बोझिल पाई गई है। अधिनियम में निहित प्रक्रिया के मद्देनजर अदालतें ऐसे मामलों को समयबद्व तरीके से शीघ्रता से निपटाने में असमर्थ हैं....."(जोर दिया गया)

उपर उल्लेखित कमियों को दूर करने के लिये, 2002 के संशोधन की धारा 10 में अधिनियम की धारा 143, 144, 145,146 व 147 शामिल किए जो मामलों को संक्षेप में निपटाने के लिए न्यायालय की शक्ति जैसे पहलुओं से व्यवहार करती हैं(धारा 143), सम्मन की तामिल का तरीका(धारा 144), हलफनामे पर साक्ष्य (धारा 145), बैंक की पर्ची को कुछ तथ्यों में प्रथम दृष्टया साक्ष्य माना जाना चाहिए(धारा 146) और अधिनियम के तहत अपराध समझौता योग्य होंगे(धारा 147)। वर्तमान में, हम निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 147 से सरोकार रखते हैं, जो इस प्रकार है-

"147. अपराध समझौता योग्य होंगे। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के तहत दंडनीय प्रत्येक अपराध समझौता योग्य होगा।"

8. इस बिन्दु पर, यह स्पष्ट करना उचित होगा कि गैर अस्थिर खण्ड के मद्देनजर, परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 के तहत अपराधों का समझौता धारा 147 द्वारा नियंत्रित किया जाता है और आपराधिक संहिता

की धारा 320 द्वारा विचार की गई योजना प्रक्रिया(इसके बाद सी.आर.पी.सी.), सख्त अर्थों में लागू नहीं होगी क्योंकि धारा 320 भारतीय दण्ड संहिता के तहत निर्दिष्ट अपराधों के लिए है। जहां तक सी.आर.पी.सी. का सवाल है, धारा 320 उन अपराधों से संबंधित है जो समझौता योग्य है, दोनों पक्षों द्वारा उनकी अनुमति के बिना न्यायालय या पक्षकारों द्वारा, लेकिन न्यायालय की अनुमति से। धारा 320 की उपधारा(1) उन अपराधों की गणना करती है जो न्यायालय की अनुमति के बिना समझौता योग्य हैं, जबकि उक्त धारा की उपधारा (2) उन अपराधों को निर्दिष्ट करती है जो न्यायालय की अनुमति से समझौता योग्य है। परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 की धारा 147 इसी अधिनियम में अपराधों के शमन को सक्षम रूप से अधिकृत करती है। उसी अधिनियम के तहत, इस प्रकार सी.आर.पी.सी. की धारा 320 की उपधारा (9) में शामिल सामान्य नियम के अपवाद के रूप में कार्य करता है, जिसमें कहा गया है कि 'इस धारा द्वारा प्रदान किए गए को छोड़कर किसी भी अपराध का शमन नहीं किया जाए'। ' इस प्रावधान को पढ़ने मात्र से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीय दंड सहिता के अलावा अन्य कानूनों के तहत दंडनीय अपराधों का भी शमन नहीं किया जा सकता है। हालांकि, चूंकि धारा 147 को एक विशेष कानून में संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया था, यह सी.आर.सी.सी. की धारा 320(9) पर अधिभावी प्रभाव रखेगा, विशेष रूप से यह ध्यान में रखते हुए कि धारा 147 में एक गैर अस्थिर खण्ड शामिल है।

9. विनय देवन्ना नायक बनाम रयोत सेवा सहकारी बैंक लि. (2008)2 एस.सी.सी. 305, में इस न्यायालय ने जांच की थी कि ''क्या अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध, जो एक विशेष कानून है, का समझौता किया जा सकता है''। पिछले निर्णयों में विचारों की भिन्नता पर ध्यान देने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूख अपनाया(सी.के.ठक्कर, जे. पैरा 17 पर)-

> ''इस प्रावधान का उद्देश्य पर्याप्त धनराशि के बिना चैक जारी करने में या उस पर कार्यवाही करने के लिये प्राप्तकर्ता या धारक को प्रेरित करने की दृष्टि से परक्राम्य लिखितों के आहर्ता की ओर से बेईमानी को रोकना है। इस प्रकार यह बैंक संचालन की प्रभावकारिता को बढ़ावा देना है और चैक के माध्यम से व्यापार लेनदेन में विश्वसनीयता सुनिश्चित करना है। इसलिए, ऐसे मामलों में, आमतौर पर अपराधों के शमन से इंकार नहीं किया जाना चाहिए। संभवतः, संसद ने भी इस पहलू को महसूस किया और परक्राम्य लिखित संशोधन और विधि प्रावधान, अधिनियम, 2002(2002 का अधिनियम 55) द्वारा धारा 147 को शामिल किया गया....''

इसी निर्णय में न्यायालय ने यह भी कहा था(परिच्छेद 11)-

"..कुछ अपराध बहुत गम्भीर होते हैं जिनमें समझौता या व्यवस्थापन अनुज्ञेय नहीं होता है। दूसरी ओर, कुछ अन्य अपराध इतने गम्भीर नहीं होते हैं और कानून पक्षकारों को समझौता करके उन्हें शमन की अनुमति दे सकता है। किसी अपराध का शमन यह दर्शाता है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ अपराध किया गया है, उसे मामले में आगे बढ़ने से रोकने के लिये एक अभिप्रेरणा के रूप में कुछ परितोषण प्राप्त हुआ है' ।

10. आर. राजेश्वरी बनाम एच.एन.जगदीश, (2008)4 एस.सी.सी. 82 में इस न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणीयां की गई थीं(परिच्छेद 12 में एस.बी.सिन्हा, जे.)-

"परक्राम्य लिखित अधिनियम एक विशेष अधिनियम है। धारा 147 एक गैर प्रमुख खण्ड का प्रावधान करती है, जिसमें कहा गया है-

147. अपराधों का शमन योग्य होना-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी।

इस अधिनियम के तहत दंडनीय प्रत्येक अपराध समझौता योग्य होगा।

निर्विवाद रूप से, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान उक्त अधिनियम के तहत अपराधों के मुकदमें के लिए न्यायालयों के समक्ष विचारण हेतु लंबित कार्यवाही पर लागू होंगे। सख्त अर्थों में, हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 से जुडी तालिका आकर्षित नहीं है क्योंकि उसमें उल्लेखित प्रावधान केवल भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों को संदर्भित करते हैं और किसी अन्य को नहीं

11. के.एम. इब्राहिम द्वारा रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के एक हालिया निर्णय में चैक बाउन्स के मामलों में मुकदमेंबाजी के बाद के चरणों में अपराध के शमन को भी स्वीकार्य माना गया है। के.एम.इब्राहिम बनाम के.पी.मोहम्मद व अन्य 2009(14) स्केल 262, जिसमें कबीर जे. ने नोट किया है(परिच्छेद 11 व 12.)-

‘‘परिच्छेद-11. जहां तक 1881 अधिनियम की धारा 147 में शामिल गैर अस्थिर खंड का सवाल है, 1881 अधिनियम एक विशेष कानून है, धारा 147 के प्रावधान अपराधों के प्रशमन से संबंधित संहिता के प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव डालेंगे....

परिच्छेद-12. यह सही है कि परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 147 के तहत अपीलीय फोरम के समक्ष कार्यवाही समाप्त होने के बाद पक्षकारों द्वारा आवेदन किया गया था। हालांकि, उपरोक्त अधिनियम की धारा 147 पक्षकारों को कार्यवाही के अपीलीय चरण में भी धारा 138 के तहत अपराध का समझौता करने से नहीं रोकती है। तदनुसार, हमे संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत कार्यवाही में भी उपरोक्त अधिनियम की धारा 147 के तहत आवेदन को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं मिलता है'

12. यह स्पष्ट है कि किसी अपराध के शमन की अनुमति अपराध की कथित गम्भीरता और प्रदान किए गए उपचार की प्रकृति से जुड़ी हुई है। इस बिन्दु पर हम एक शैक्षणिक टिप्पणी से निम्नलिखित उद्धरणों का उल्लेख कर सकते हैं। {उद्धृत के.एन.सी. पिल्लई, आर.वी.केलकर्स की आपराधिक प्रक्रिया, 5 वां संस्करण(लखनउःईस्टर्न बुक कंपनी, 2008)पृष्ठ संख्या 444 पर)-

"एक अपराध अनिवार्य रूप से समाज और राज्य के खिलाफ एक दोष है। इसलिए, आरोपी व्यक्ति और अपराध के पीड़ित व्यक्ति के बीच किसी भी समझौते से आरोपी को आपराधिक जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

हालांकि, जहां ये अपराध अनिवार्य रूप से निजी प्रकृति के होते हैं और अपेक्षाकृत बहुत गम्भीर नहीं होने के कारण, संहिता उनमें से कुछ को समझौता योग्य अपराधों के रूप में पहचानना समीचीन मानती है और कुछ अन्य केवल न्यायालय की अनुमति के साथ समझौता योग्य हैं

हाल ही में प्रकाशित एक टिप्पणी में, अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणीयां की गई हैं{उद्वृत अरूण मोहन, धारा 138, परक्राम्य लिखित अधिनियम के विषय पर कानून सुधारों के प्रति कुछ विचार-टेकलिंग एन एवालांच ऑफ केसेज(नई दिल्लीःयुनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी प्राईवेट लिमिटेड, 2009)पृष्ठ संख्या 5 पर)-

‘‘...अपराध के अन्य रूपों के विपरीत, यहां सजा(जहां तक शिकायतकर्ता का संबंध है) प्रतिशोध लेने का एक साधन नहीं है, बल्कि पैसे का भुगतान सुनिश्चित करने का एक साधन है। शिकायतकर्ता का हित प्राथमिक रूप से चैक काटने वाले को जेल में देखने के बजाए पैसे वसूल करना है, जेल की धमकी, वसूली सुनिश्चित करने का एक तरीका मात्र

है। जेल की सजा भुगतने के इच्छुक अभियुक्त के विपरीत, चैक धारक के लिए उपचार के रूप में बहुत कम उपचार है।

यदि हम दायर की गई उन शिकायतों की संख्या की जांच करें तो एक तरफ अंतिम फैसले से पहले 'समझौता या 'निपटारा' कर ली गई थीं और दूसरी तरफ उन मामलों की जांच करें जो फैसले और सजा तक पहुंचे, तो हम पाएंगे कि अधिकांश का निपटान किया गया था और केवल एक मामूली संख्या में जारी रहीं ।

13. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चैक के अनादरण के अपराध के संबंध में, यह उपाय एक प्रतिपूरक पहलू है जिसे दंडात्मक पहलू पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए। विद्वान महान्यायवादी द्वारा उठाई गई आशंकाओं के लिए कुछ समर्थन भी है कि चैक बाउन्स के अधिकांश मामलों में वास्तव में समझौता किया जा रहा है या समझौते के माध्यम से निपटाया जा रहा है, भले ही मुकदमेंबाजी के बाद के चरणों के दौरान न्याय प्रदान करने में अनुचित देरी हो रही हो। यहां समस्या वादियों की अपने विवाद को सुलझाने के साधन के रूप में देर से समझौते को चुनने की प्रवृत्ति से है। इसके अलावा, विद्वान महान्यायवादी की ओर से दायर लिखित तर्कों से इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि धारा 320 के विपरीत सी.आर.पी.सी., परक्राम्य अधिनियम लिखित अधिनियम की धारा 147 इस बारे में कोई

स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं देती है कि किस चरण में प्रशमन किया जा सकता है अथवा नहीं किया जा सकता और क्या प्रशमन शिकायतकर्ता के कहने पर या अदालत की अनुमति से किया जा सकता है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, विद्वान महान्यायवादी का कहना है कि वैधानिक मार्गदर्शन के अभाव में, जैसे ही मजिस्ट्रेट शिकायतों का संज्ञान लेते हैं, पक्षकार अंतिम उपाय के रूप में प्रशमन का विकल्प चुन रहे हैं। इस तरह के व्यवहार के लिये एक स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि आरोपी व्यक्ति मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों के माध्यम से आगे बढ़ने का मौका लेने के इच्छुक हैं और फिर समझौते का रास्ता तभी चुनते हैं जब कोई अन्य रास्ता नहीं बचता है। हालांकि इस तरह के व्यवहार को वादियों के दृष्टिकोण से तर्कसंगत माना जा सकता है, लेकिन कठिन तथ्य यह है कि प्रशमन का विकल्प चुनने में अनुचित देरी विभिन्न स्तरों पर अदालतों के समक्ष लंबित प्रकरणों की संख्या बढ़ाने में योगदान करती है। यदि अभियुक्त मुकदमेंबाजी के बाद के चरण में अपराध को कम करने के माध्यम से समझौता करने या व्यवस्थापन करने को तैयार है, तो यह आमतौर पर शिकायतकर्ता के मामले में कुछ गुणावगुण का संकेत है। ऐसे मामलों में यह वांछनीय होगा कि पक्षकार मुकदमेबाजी के प्रारम्भिक चरणों के दौरान समझौते का विकल्प चुने। हालांकि, यदि आरोपी के पास गलती, जालसाजी या उत्पीड़न जैसे अन्य आधारों पर वैद्य बचाव है, तो मामले पर निर्दिष्ट मंचों के माध्यम से मुकदमा चलाया जा सकता है।

14. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 143 धारा 138 के तहत अपराध को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी(जेएमएफसी) द्वारा विचारणीय बनाती है। मुकदमें के बाद, आगे की कानूनी कार्यवाही की प्रगति इस बात पर निर्भर करेगी कि दोषी ठहराया गया है या बरी कर दिया गया है।

दोषसिद्धी के मामले में, सी.आर.पी.सी. की धारा 374(3)(ए) के तहत सत्र न्यायालय में अपील की जाएगी, उसके बाद सी.आर.पी.सी. की धारा 397/401 के तहत उच्च न्यायालय में एक निगरानी और अंत में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका जिसमें भारत के संविधान की धारा 136 के तहत अपील करने की विशेष अनुमति मांगी जायेगी। इस प्रकार, दोषसिद्धी के मामले में मुकदमेबाजी के चार स्तर होंगे।

न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा दोषमुक्त किए जाने की स्थिति में, शिकायकर्ता सी.आर.पी.सी. की धारा 378(4) के तहत उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है, उसके बाद अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की विशेष अनुमति प्राप्त कर सकता है। इसलिए ऐसे मामले में कार्यवाही के तीन स्तर होंगे।

15. चैक बाउन्स के मामलों में मुकदमेंबाजी की प्रगति के संबंध में, विद्वान महान्यायवादी ने इस न्यायालय से उन पक्षों पर खर्चे लगाने की एक श्रेणीबद्ध योजना के लिए दिशानिर्देश तैयार करने का आग्रह किया है

जो अपराध के समझौते में अनावश्यक देरी करते हैं। यह निवेदन किया गया था कि खर्चे जमा करने की आवश्यकता विलंबित संरचना के लिए एक निवारक के रूप में कार्य करेगी, क्योंकि वर्तमान में, किसी भी स्तर पर अपराधों का मुफ्त और आसान प्रशमन, भले ही वर्षों से मामले में देर से हो, चैक जारी करने वाले को निपटान में देरी करने के लिये प्रोत्साहन देता है। कई वर्षों के बाद किए गए प्रशमन आवेदन के परिणामस्वरूप न केवल व्यवस्था पर बोझ पड़ता है बल्कि शिकायतकर्ता प्रभावी न्याय से भी वंचित हो जाता है। इस निवेदन को ध्यान में रखते हुए हम निर्देश देते हैं कि निम्नलिखित दिशानिर्देशों का पालन किया जाएः-

दिशानिर्देशः-

(1) इन परिस्थितियों में, यह इस प्रकार प्रस्तावित हैः-

(ए) यह निर्देश दिया जाता है कि सम्मन की रिट को उचित रूप से संशोधित किया जाए जिससे आरोपी को यह स्पष्ट हो सके कि वह प्रकरण की पहले या दूसरे सुनवाई के समय में अपराधों के शमन के लिये आवेदन कर सकता है। मामले की सुनवाई और यदि ऐसा कोई आवेदन किया जाता है, तो न्यायालय द्वारा आरोपी पर कोई जुर्माना लगाए बिना प्रशमन की अनुमति दी जा सकती है।

(बी) यदि अभियुक्त उपर्युक्त के अनुसार प्रशमन के लिए आवेदन नहीं करता है, तो यदि पश्चातवर्ती चरण में मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रशमन के लिए आवेदन किया जाता है, तो प्रशमन की अनुमति, इस शर्त के अधीन कि अभियुक्त को कानूनी सेवा प्राधिकरण, या ऐसे प्राधिकरण जिसे न्यायालय उचित समझे, के साथ समझौता करने की शर्त के रूप में जमा की जाने वाली चैक राशि का दस प्रतिशत भुगतान करना होगा, दी जा सकती है।

(सी) इसी प्रकार, यदि पुनरीक्षण या अपील में प्रशमन के लिये आवेदन सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष किया जाता है, तो ऐसे प्रशमन की अनुमति इस शर्त पर दी जा सकती है कि अभियुक्त लागत के रूप में चैक राशि का पन्द्रह प्रतिशत भुगतान खर्चे के रूप में जमा करे।

(डी) अंत में, यदि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रशमन के लिये आवेदन किया जाता है, तो यह आंकड़ा चैक राशि का 20 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा।

यहां यह भी स्पष्ट किया जाना उचित है कि उक्त दिशानिर्देशों के अनुसार लगाई गई कोई भी लागत उस न्यायालय के स्तर पर कार्यरत विधिक सेवा प्राधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए जिसके समक्ष समझौता होता है। उदाहरण के लिये, मजिस्ट्रेट न्यायालय या सत्र

न्यायालय के समक्ष कार्यवाही लंबित होने के दौरान समझौते के मामले में, ऐसी लागत जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए। इसी प्रकार उच्च न्यायालय के समक्ष संरचना के संबंध में लगाई गई लागत राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए और उच्चतम न्यायालय के समक्ष संरचना के संबंध में लगाई गई लागत राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए।

16. हम एक ही लेनदेन से संबंधित कई शिकायतों को दाखिल करने को नियंत्रित करने के लिये विद्वान महान्यायवादी के सुझावों से भी सहमत हैं। यह निवेदन किया गया था कि कई न्यायालयों में परेशान करने वाले तरीके से शिकायतें तेजी से दर्ज की जा रही है, जिससे चैक जारी करने वालों को जबरदस्त परेशानी और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, किसी ऋण से संबंधित उसी लेन देन में एक किश्त के आधार पर समान मासिक किश्तों में भुगतान किया जाना है, कई चैक लिए गए हैं जो प्रत्येक मासिक किश्त के लिये दिनांकित हैं और ऐसे प्रत्येक चैक के अनादरण पर, अलग अलग न्यायालयों में अलग अलग शिकायतें दायर की जा रही है, जिनके पास शिकायत के संबंध में क्षेत्राधिकार हो सकता है। इस निवेदन के आलोक में, हम निर्देश देते हैं कि शिकायतकर्ता के लिये यह खुलासा करना अनिवार्य होना चाहिए कि उसी लेनदेन के संबंध में किसी अन्य अदालत में कोई अन्य शिकायत दर्ज नहीं की गई है। ऐसा

खुलासा सी.आर.पी.सी. की धारा 200 के तहत दर्ज शिकायत के साथ प्रस्तुत एक शपथ पत्र में किया जाना चाहिए। यदि यह पाया जाता है कि ऐसी कई शिकायतें दर्ज की गई है, तो आमतौर पर उच्च न्यायालय को शिकायतकर्ता पर भारी जुर्माना लगाने की पद्धति को अपनाकर शिकायत को प्रथम न्यायालय में में स्थानांतरित करने का आदेश दिया जाना चाहिए। इन निर्देशों को भविष्यलक्षी रूप से प्रभावी किया जाना चाहिए।

17. हम इस विचार के प्रति भी सचेत हैं कि उपरोक्त उद्धृत दिशानिर्देशों के न्यायिक समर्थन को न्यायिक कानून बनाने के एक कार्य के रूप में देखा जा सकता है और इसलिए यह विधायी क्षेत्र में घुसपैठ है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 147 अधिनियम के तहत अपराधों के शमन के साथ आगे बढ़ने के बारे में कोई मार्गदर्शन नहीं देती है। हम पहले ही बता चुके हैं कि सी.आर.पी.सी. की धारा 320 के तहत विचार की गई योजना का कड़ाई से पालन नहीं किया जा सकता है। विधायी शून्यता को देखते हुए, हमें कुछ सुझावों का समर्थन करने में कोई बाधा नहीं दिखती है जो अधिनियम की धारा 138 के मामलों में पक्षकारों द्वारा अनावश्यक देरी करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने के लिये तैयार किए गए हैं। अधिनियम की धारा 138 से जुड़े मामलों में खर्चा लगाने की श्रेणीबद्ध योजना मुकदमेंबाजी के प्रारंभिक चरण में प्रशमन को प्रोत्साहित करने का एक साधन है। यथास्थिति में, न्यायालय का बहुमूल्य समय इन

मामलों की सुनवाई पर खर्च होता है और पक्षकार किसी भी न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिये उत्तरदायी नहीं होते हैं क्योंकि कार्यवाही आपराधिक प्रक्रिया संहिता द्वारा शासित होती है, भले ही अपराध का प्रभाव काफी हद तक निजी पक्षकारों तक ही सीमित है। भले ही सक्षम न्यायालय द्वारा खर्चे लगाना न्यायिक विवेक का विषय है, समरूपता के हित में खर्चे के पैमाने का सुझाव दिया गया है। जबकि सक्षम न्यायालय ऐसे विचलन को कारण अभिलिखित करते हुए निश्चित रूप से किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के संबंध में खर्चे को कम कर सकता है। सदाशयी वादियों को निस्संदेह इस कार्यवाही का तर्कपूर्ण अंत तक विरोध करना चाहिए। जहां विधायी शून्यता थी, अतीत में भी इस न्यायालय ने विषय वस्तु के संबंध में दिर्शानिर्देश तैयार करने के लिये संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण न्याय करने की अपनी शक्ति का उपयोग किया है।

18. तदनुसार प्रस्तुत अपीलों का निस्तारण किया जाता है।

आर.पी. अपीलें निस्तारित।

यह अनुवाद ऑर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री गोपाल बिजोरीवाल, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण-यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।